कर रहे हैं तथा समय की यही मांग है। अब ये प्रश्न उठते हैं कि भारतीय शिक्षा का विदेशीकरण कैसे हुआ? दूसरे शिक्षा के भारतीयकरण का क्या अर्थ है? तीसरे प्रस्तुत अध्ययन का भारतीयकरण की दृष्टि से क्या महत्व है?

मुस्लिम सत्ता में पराभव काल में भारत के साथ व्यवहार करने की दृष्टि से 1600 ई० में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारत में प्रवेश किया। प्रवेश के कुछ समय बाद कम्पनी का उद्देश्य व्यापारिक होने के साथ–साथ धार्मिक भी हो गया। पुर्तगालियों का पहला पादरी भारत में सेन्ट जेवियर था जिसने शिक्षा तथा धर्म, दोनों के प्रसार–प्रचार का बीड़ा उठाया। ये एक हाथ में घण्टी और एक हाथ में पुस्तक लेकर गाँव–गाँव घूमते थे। उन्होंने अपने भाई मंसीला को प्रत्येक गाँव में स्कूल खोलने का निर्देश दिया, जिससे बालक प्रतिदिन विद्यालय में जो सकें। सन् 1555 ई० में सैन्ट ऐने कॉलिज की स्थापना बांदरा (बम्बई) में की गयी। सन् 1580 ई० में चोल गोवा में जैसूट कॉलिज खोला गया। डच लोगों ने भी अंग्रेजों के साथ मिलकर ''क्रिश्चिन मिशन कमेटी'' बनाकर ईसाई शिक्षा का प्रसार किया।

सन् 1614 ई० में कम्पनी ने अपने भारतीय ईसाईयों को अपने खर्चे पर इंग्लैण्ड भेजना प्रारम्भ किया ताकि वे वहां पर ईसाई पादरियों से धर्म प्रचार करने का प्रशिक्षण प्राप्त कर सकें। सन् 1673 ई में प्रिंगल ने मद्रास में माध्यमिक स्कूल खोला। इसमें कम्पनी के कर्मचारियों के बच्चे पढ़ते थे। सन् 1659 ई० में कम्पनी के संचालक मण्डल ने स्पष्टया घोषणा की कि भारत में हर सम्भव तरीके से ईसाई धर्म का प्रचार–प्रसार किया जाना चाहिए तथा संचालक मण्डल के प्रत्येक जलयान में एक ईसाई पादरी को भारत ले जाना चाहिए। सन् 1698 ई० के आज्ञा पत्र के अनुसार 1715 ई० से 1731 ई के मध्य मद्रास, बम्बई, कलकत्ता, तंजोर तथा कानपुर आदि में दान आश्रित विद्यालय खोले गये। इन विद्यालयों का उद्देश्य अंग्रेजों, एंग्लो इण्डियनों, कम्पनी के कर्मचारियों व निर्धन बच्चों को निशुल्क शिक्षा देना था। इन विद्यालयों के नाम इंग्लैण्ड के विद्यालयों के नाम पर रखे गये। इस चार्टर के अनुसार तीनों प्रेसीडेंसी नगरों में धर्माधिकारी नियुक्त किये गये। सन् 1765 ई० में बक्सर के युद्ध के पश्चात् कम्पनी को भारत में राजनीतिक शक्ति प्राप्त हो गयी। उसे बिहार, उड़ीसा व बंगाल की दीवानी प्राप्त हुई। कम्पनी ने अपनी राजनीतिक विजय को बनाये रखने के लिए सभी प्रकार के लोगों को सन्तुष्ट रखना चाहा, फलस्वरूप 1765 ई० के पश्चात् कम्पनी ने मिशनरियों को धर्म प्रचार के लिए आर्थिक सहायता तथा प्रोत्साहन बन्द कर दिया और शिक्षा के क्षेत्र में कठोर धार्मिक, तटस्थता समाप्ति का कारण इंग्लैण्ड में चार्ल्स ग्रान्ट के नेतृत्व में चला आन्दोलन था। चार्ल्स ग्रान्ट 13 वर्षों तक भारत में रह चुका था। उसने सबसे पहले यह आवाज उठाई की भारत में शिक्षा का प्रसार करना सरकार का कर्तव्य है। इसमें ''ऑब्जर्वेशन'' नामक शीर्षक से लेख लिखकर इंग्लैण्ड के लोगों को यह समझाया कि अज्ञान और धर्म के अभाव में भारतीय समाज अत्यन्त भयावह है। भारत में व्याप्त अंधकार को दूर करने का एक मात्र उपाय प्रकाश को लाना है। हिन्दू गलतियाँ करते हैं, क्योंकि वे अज्ञानता में फँसे हुए हैं, और उनकी गलतियाँ को कभी उनके सामने नहीं लाया गया। हमारे ज्ञान के प्रकाश को भारतीयों तक पहुँचाना ही इस अन्धकार रूपी अज्ञानता की एक मात्र औषधि है। वह चाहता था कि शिक्षा के द्वारा

भारतीयों में नैतिक जागृति उत्पन्न हो। वह पाश्चात्यावादी दृष्टिकोण का समर्थक था। उनका कहना था कि अंग्रेजी सहित्य, विज्ञान दर्शन और धर्म की शिक्षा भारतवासियों के बौद्धिक स्तर को ऊँचा उठा देगी। ग्रान्ट ने प्रसार के लिए अंग्रेजी भाषा को उपयुक्त माध्यम माना।

इस प्रकार 1813 ई० में ग्रान्ट के समर्थकों की विजय हुई। विलवार फोर्स ने भी ग्रान्ट की यथेष्ट सहायता की। तटस्थता की नीति का परित्याग करते हुए 1813 ई० के चार्टर में स्पष्ट उल्लेख है कि ईसाई धर्म प्रचारकों को भारत में प्रवेश करने, निवास करने, धर्म प्रचार करने, चर्च स्थापित करने की स्वतन्त्रता प्रदान कर दी गयी। कम्पनी का यह दायित्व हो गया कि वह भारतीयों की शिक्षा की व्यवस्था करें और वर्तमान व्यवस्था में सुधार करें। कम्पनी से कहा गया कि वह कम से कम एक लाख रूपये (उस समय के दस हजार पौण्ड) शिक्षा प्रसार में प्रतिवर्ष व्यय करें। सन् 1833 ई० तक कम्पनी की ओर से शिक्षा के प्रति उदासीनता बरती गयी। इस काल में विवाद का मुख्य कारण था कि शिक्षा प्राची के अनुसार दी जाये या प्रतिची के अनुसार। इस विवाद के फलस्वरूप आज्ञा पत्र की धारा 43 निष्क्रिय रही। 10 जून सन् 1834 ई० को लार्ड मैकाले भारत में कम्पनी का विधि सदस्य बनकर आया। वह अंग्रेजी का विद्वान था, चार्ल्स ग्रान्ट के विचारों का समर्थक था तथा प्राच्य विद्या को हीन समझता था। भारत में विलियम बैटिंग ने उसे लोक शिक्षा समीति का भी प्रधान बना दिया। कम्पनी ने सन् 1813 ई० में आज्ञा पत्र की धारा 43 व एक लाख रूपये के व्यय पर मैकाले से कानूनी राय माँगी। उसने 2 फरवरी 1835 को निर्णय दिया। मैकाले ने पश्चिमी सभ्यता संस्कृति व ज्ञान को भारतीय शिक्षा का आधार माना तथा अंग्रेजी भाषा को शिक्षा का माध्यम बना दिया।

पाच्यविदों ने मैकाले के विचारों का विरोध किया लेकिन तत्कालीन गर्वनर लार्ड विलियम बैटिंग ने 7 मार्च 1835 ई० को मैकाले की शिक्षा की नीति का समर्थन करते हुए शिक्षा नीति की घोषणा कर दी। इस नीति में यूरोपीय साहित्य और विज्ञान का प्रचार प्राच्य साहित्य के प्रकाशन की उपेक्षा तथा अंग्रेजी साहित्य के प्रसार पर बल दिया गया। 19 जुलाई 1854 को एक नया घोषणा शिक्षा पत्र आया। जिस समिति ने इस घोषणा पत्र को तैयार किया था उसके अध्यक्ष का नाम चार्ल्स वुड था। उसके नाम पर यह महत्वपूर्ण घोषणा पत्र ''वुड का घोषणा पत्र'' कहलाया। इस घोषणा पत्र में मैकाले द्वारा घोषित शिक्षा नीति का समर्थन किया गया था। इसमें स्पष्टतया कहा गया कि भारतीय शिक्षा का आधार पाश्चात्य सभ्यता संस्कृति, ज्ञान और विज्ञान ही है तथा भाषा का माध्यम भारतीय भाषाओं के साथ–साथ अंग्रेजी को ही रखा गया। भारतीय जनता की शिक्षा का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व कम्पनी प्रशासन के ऊपर रखा गया था और उसे स्पष्ट बता दिया गया था कि भारतीयों को शिक्षित करना कम्पनी के प्राथमिक कर्तव्यों में से एक महत्वपूर्ण कर्तव्य है और उसकी उपेक्षाा असहनीय होगी।

इस कर्तव्य का उल्लेख करते हुए कहा गया कि यद्यपि हमारे सामने अनेक महत्वपूर्ण विषय हैं तथापि उनमें से हमें सबसे पहले और अधिक ध्यान शिक्षा की ओर देना चाहिए। हमारे अत्यन्त पवित्र कर्तव्यों में से यह भी एक कर्तव्य है कि जहां तक हमारे लिए साध्य हो हम भारत के मूल निवासियों को उन नैतिक एवं भौतिक वरदानों को देने के लिए साधान बने। जो लाभप्रद ज्ञान के सामान्य प्रसार से प्राप्त होते हैं और जिन्हें भारत नियति वश

इंग्लैण्ड के साथ सम्बन्ध होने के कारण प्राप्त कर सकता है। आगे इसको और विस्तृतता प्रदान करते हुए कहते हैं कि हमें जोरदार शब्दों में यह घोषणा कर देनी चाहिए कि हम भारत में जिस शिक्षा का प्रसार करना चाहते थे, संक्षेप में कहा जा सकता है कि यह यूरोपिय ज्ञान का प्रसार करना है। इस प्रकार मैकाले ने 1835 ई० में भारतीय शिक्षा का दार्शनिक आधार प्रस्तुत किया, उसे ही वुड द्वारा 1854 ई० में मान्यता प्रदान करते हुए सुदृढ़ आधार प्रदान किया। इसके परिणाम स्वरूप भारतीय संस्कृति पर आधारित परम्परागत शिक्षा प्रणाली का पूर्णतः उन्मूलन हो गया। भारत में भारतीयों के ईसाईकरण का मार्ग प्रत्यक्ष व परोक्ष निष्कंटक हो गया। ईसाई धर्म प्रचारक शिक्षा के माध्यम से हिन्दूओं का ईसाईकरण करने में संलग्न थे। उन्होंने ईसाईकरण का खुलकर प्रचार व प्रसार किया। मैकाले ने अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार और तत्कालीन हिन्दू शिक्षा प्रणाली का बहिष्कार करते हुए अपने पिता के पास पत्र लिखा था कि अंग्रेजी शिक्षा का प्रभाव हिन्दूओं पर बहुत अच्छा पड़ रहा है जो भी हिन्दू अंग्रेजी पढ़ते हैं वे अपने धर्म व समाज के भक्त नहीं रह जाते। उनमें कुछ तो दिखावे भर के लिए हिन्दू रह जाते हैं कुछ धर्म विरोधी बन जाते हैं और कुछ ईसाई हो जाते हैं, मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि यदि हमारी यह शिक्षा योजना चलाई जाती रही तो तीस वर्षों में बंगाल के उच्च वर्गों में एक भी मूर्ति पूजक नहीं बच सकेगा। इससे निष्कर्ष निकलता है कि शिक्षा के द्वारा ईसाईकरण की प्रक्रिया कितने बड़े स्तर पर चल रही थी। मैकाले ने दो फरवरी, 1835 ई० को अपनी शिक्षा नीति के क्रियान्वयन के समय कहा था कि ''हम चाहते हैं कि भारतीय केवल रंग से ही भारतीय रहे किन्तु खान–पान, रहन– सहन, आचार–विचार सभी बातों में पूर्णत अंग्रेज बन जाये।''

स्वतन्तत्रता प्राप्ति के पश्चात् भी आज तक उपर्युक्त आरोपित शिक्षा प्रणाली ही प्रचलित है। प्रत्येक देश व समाज की अपनी विशेषतायें होती हैं। भारत एक पुरातन देश है, इसकी संस्कृति अत्यन्त प्राचीन होने के कारण यहां की सामाजिक व्यवस्था, उसके सामाजिक आदर्श व मर्यादायें अपनी विशेषतायें रखते हैं। शिक्षा समाज की आधाशिला होती है। उसी के माध्यम से उसके लक्ष्य व जीवन प्रणाली पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होते रहते हैं। यहां जो शिक्षा प्रणाली अंग्रेजों द्वारा प्रचलित की गयी वह यूरोप की शिक्षा प्रणालियों के अनुकरण पर थी। उसमें विदेशी तत्वों की प्रमुखता रही भारतीय जीवन प्रणाली व दर्शन का समावेश नहीं किया गया। अतः वह पूर्णतया अभारतीय और अस्वाभाविक सिद्ध हुई।

समय–समय पर विभिन्न शिक्षा आयोग गठित हुए उन्होंने भी शिक्षा के लिए भारतीय परिवेश के अनुसार स्वतन्त्र शिक्षा नीति की बात की, लेकिन अभी तक यह सम्भव नहीं हो सका है। यदि हम स्वाभिमानी भारतीय पीढ़ी का निर्माण करना चाहते हैं तो विदेशी शिक्षा प्रणाली का भारतीयकरण करना होगा। भारतीयकरण का अर्थ है कि भारत की संस्कृति तथा सभ्यता एवं जीवन दर्शन को भारतीय शिक्षा प्रणाली का आधार बनाना ताकि यह भारतीय आकॉंक्षाओं की पूर्ति करते हुए भारतीय नागरिकों का निर्माण कर सकें। वह देश की आवश्यकताओं एवं आकॉंक्षाओं के अनुरूप हो। इस अनुरूपता की प्राप्ति के लिए हमें अपनी भारतीय संस्कृति के सदैव बदलते हुए स्वरूप के अनुरूप चलना होगा। अन्य राष्ट्रों के समक्ष में आने के लिए जिन साधनों एवं कार्यों की आवश्यकता हो, उनकी पूर्ति में शिक्षा को समक्ष बनाना ही शिक्षा का

भारतीयकरण होगा। 31 जुलाई 1937 ई० के ''हरिजन'' में स्वयं गांधी जी ने लिखा है कि ''शिक्षा से मेरा अभिप्राय है बच्चे या मनुष्य की सभी शारीरिक मानसिक और आत्मिक शक्तियों का सर्वतोमुखी विकास है।'' अक्षर ज्ञान न तो शिक्षा का प्रारम्भ है और न अन्तिम लक्ष्य। वह तो अनेक उपायों में से एक है। जिससे स्त्री–पुरूषों को शिक्षित किया जा सकता है। गांधी जी आगे कहते हैं कि जो मुक्ति के योग्य बनाये वही शिक्षा है। अतः जो चित् की शुद्धि न करें, मन व इन्द्रियों को वश में करना न सिखाये, निर्भरता और स्वावलम्ब उत्पन्न करें, जीवन निर्वाह का साधन न बतायें, दासता से मुक्ति और स्वतन्त्रता से रहने का उत्साह तथा सामर्थ्य उत्पन्न न करें, उस शिक्षा में चाहे जितने ज्ञान का कोष, तक की कुशलता और भाषा की प्रवीणता क्यों न उपस्थित हो, वह शिक्षा नहीं है। गांधी जी के इन शब्दों में जहां अंग्रेजों द्वारा भारत में चलाई गयी शिक्षा प्रणाली के दोष स्पष्ट होते हैं वहीं शिक्षा के सम्बन्ध में प्राचीन भारतीय विचारधारा भी स्पष्ट होती है। शिक्षा में विदेशीपन की समाप्ति गांधी जी का परम लक्ष्य था। गांधी जी की विचारधारा के समान ही अन्य महान विभूतियां हुई, उन्होंने भी इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किये। महर्षि दयानन्द, टैगोर, अरविन्द आदि ने भारतीय जीवन परम्परा पर आधारित शिक्षा संस्थाओं की स्थापना की। इन संस्थाओं में गुरूकुल कांगड़ी, शान्ति निकेतन, अरविन्द घोष आदि उल्लेखनीय है। नेहरू जी ने भारतीयकरण को समझाते हुए कहा कि विदेशी तत्वों के समावेशन एवं आत्मसातकरण की प्रक्रिया का नाम ही भारतीयकरण है। बलराज मधोक ने भारत राष्ट्र के प्रति राष्ट्रीयता की भावना का विकास करने को ही भारतीयकरण कहा है। ये राष्ट्रीय भावना भारतीय शिक्षा पद्धति के द्वारा ही आ सकती है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् तीन राष्ट्रीय शिक्षा अयोगों का गठन हुआ, तीनों आयोगों ने भी अपने–अपने तरीकों से शिक्षा के भारतीयकरण का समर्थन किया।

पंडित नेहरू चाहते थे कि राष्ट्र और इसके लोग जीवन के हर क्षेत्र में उन्नति करें और भारत विश्व राजनीति में एक सम्मानजनक स्थान प्राप्त करें। वे आधुनिक दृष्टिकोण के व्यक्ति थे, उनके विचारों में पश्चिमी शिक्षा का प्रभाव था। एक बहुमुखी व्यक्तित्व वाले व्यक्ति की तरह उन्होंने राष्ट्र के लिए राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक चिन्तक के रूप में कार्य किया। उन्होंने प्रजातन्त्र, धर्म, निरपेक्षता राष्ट्रीय चरित्र, नैतिक मूल्य, बच्चों और स्त्रियों की शिक्षा, विज्ञान और तकनीकी शिक्षा और व्यवसायिक शिक्षा पर अपने विचार प्रकट किये। वह चाहते थे कि लोगों में शिक्षा के प्रति जागरूकता विकसित हो। उनके कार्यकाल में देश ने हर क्षेत्र में उन्नति की। नेहरू ने समझ लिया था कि आधुनिक विज्ञान और तकनीकी के आधार पर ही भारत प्रगति कर सकता है किन्तु इसके साथ ही वह इस बात जोर देते थे कि नैतिक और आध्यात्मिक विकास के बिना वैज्ञानिक और भौतिक क्षेत्र में तमाम प्रगति निरर्थक सिद्ध हो सकती है। अतः उन्होंने अनुरोध किया कि शरीर और आत्मा के बीच, प्रकृति के एक अंग के रूप में, मनुष्य तथा समाज के एक अंग के रूप में, मनुष्य के बीच सन्तुलन स्थापित किया जाये।

आज व्यक्ति को, समाज को, राष्ट्र को व विश्व को इस दर्शन की आवश्यकता है। यह जीवन की कड़वाहट और विषमताओं के बीच जिस आस्था को पालता है वह सम्पूर्ण विश्व

को एक उच्च, स्वस्थ और मानवीय धरातल पर लाकर खड़ा कर देती है। ऐसी सम्पष्ह, निर्मल, जीवन दर्षष्टि आज के युग में हमें नेहरू जी का उपर्युक्त दर्शन ही दिखाता है। सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् तीनों के समीकरण से मानवता को सम्बल मिल जाता है।

आज के विघटित समय में मानव में नैतिक जीवन मूल्य अर्थहीन हो गये हैं। सामाजिक विषमता और आज की स्वार्थपूर्ण मानसिकता में यदि व्यक्तित्व की पहचान सुरक्षित रह सकी तो नेहरू ने आनन्दवादी दर्शन से ही आज के सन्दर्भ में केवल पंडित जी का शिक्षा दर्शन ही स्वस्थ जीवन की चेतना को जगाकर समाज की मानवीय संवेदनाओं से जोड़ सकता है।

यन्त्रों और शस्त्रों के आविष्कार हो जाने से मानव एक ऐसा खेल, खेल रहा है, जिसमें प्रतिदिन भीषण जनसंहार और उनसे सामूहिक बलि का एक निराला मार्ग भी प्रशस्त रहा है। परिणामतः इससे न तो पूँजीपति तथा शासक वर्ग स्वयं सुख से जी रहा है और न साधारण जनता को ही सुख से जीने देता है। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि पंडित नेहरू का शिक्षा दर्शन आधुनिक युग की समस्याओं की ओर संकेत करता हुआ प्रतीत होता है तथा वह भारतीय संस्कृति के ह्रदयवादी आध्यात्मिक तथा पश्चिमी बुद्धिवादी संस्कृति के मिलन का समन्वय है जिसमें धर्म व शक्ति, ह्रदय एवं बुद्धि, प्रवृत्ति और निवृत्ति, भोग और त्याग, भौतिक और आध्यात्मिक तथा ग्राम्य और नागरिक सभ्यता का सन्तुलन सुरक्षित रहकर मानवता के विकास का आधार बन सकता है। इसमें विश्व प्रेम तथा विश्व मैत्री की तथा लोकमंगल की भावनायें बलवती होंगी। यही नेहरू जी के स्वस्थ जीवन दर्शन का मूलाधार था।

नेहरू के मस्तिष्क में भावात्मक विश्वास कौंधा था कि शिक्षा के द्वारा किस प्रकार से नयी सामाजिक व्यवस्था सम्भव हो सकती है जिसके विषय में दूसरे किसी ने भी कोई कल्पना नहीं की। इस प्रकार की सामाजिक व्यवस्था में हम अपने बच्चों को सामाजिक चिन्ता, आर्थिक विषमता से अधिक स्वतन्त्र बना कर पहले से अधिक साधन सम्पन्न बना सकते हैं, विचार करने की प्रेरणा दे सकते हैं और अनुभव करने में, आनन्द करने में आनन्द का प्रशिक्षण दे सकते हैं। नेहरू जी एक नयी प्रकार की सामाजिक व्यवस्था लाना चाहते थे, जो देश में इससे पूर्व नहीं जानी गयी।

व्यक्ति के रूप में नेहरू जी को प्रजातन्त्र के प्रति गहरी आस्था थी। जब तक शिक्षा प्रजातन्त्र के मूल दर्शन पर आधारित नहीं होगी तब तक धर्म निरपेक्ष दर्षष्टिकोण को प्रभावशाली रूप में विकसित नहीं कर सकती। कोई भी व्यवस्था चाहे कितनी भी मंहगी हो, यह भलाई का प्रसार नहीं कर सकती। जब तक कि शिक्षा प्रजातांत्रिक मूल्यों पर आधारित न हो। उन्होंने जोर दिया है कि ''प्रजातन्त्र'' को सफल बनाने के लिए प्रभावपूर्ण जनमत और उत्तरदायित्व की भावना की पृष्ठभूमि आवश्यक है।

प्रजातन्त्र के युग में विज्ञान व तकनीकी शिक्षा की महत्वपूर्ण आवश्यकता है। जिसे नेहरू ने भारत के विकास के लिए महत्वपूर्ण माना है। पंडित नेहरू ने कहा था कि ''आज के आद्यौगिक केन्द्र ही आधुनिक भारत के मन्दिर हैं।'' उनका मत था कि यदि विज्ञान के उत्कृष्ट चमत्कारों से जन मानस का जुड़ाव नहीं होगा तो देश की उन्नति सम्भव नहीं। पंडित नेहरू

विज्ञान के प्रति कितना लगाव रखते थे इसका स्पष्ट उदाहरण यह है कि ''विज्ञान कांग्रेस'' का अधिवेशन जब भी होता था उसका उद्घाटन पंडित नेहरू जी ही करते थे। देश के बड़े–बड़े विश्वविद्यालयों की रचना, उनमें विशेषतः मेडिकल, कृषि, इंजीनियरिंग, आई०टी०आई०, साइन्स कॉलिज, भाभा एटोमिक रिसर्च सेन्टर आदि की स्थापना, पंडित नेहरू किसी चीज पर निर्णय लेते समय उस पर तकनीकी रुप से विचार करते थे। यह उनके वैज्ञानिक दृष्टिकोण का भी परिचय देता है जिसकी आज के युग में महती आवश्यकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. महेष चन्द्र सिंघल, ''भारतीय षिक्षा की वर्तमान समस्यायें'', राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1970, पष्ठ 57 – मैकाले मिनिट्स पुनः उपधृत, सुरेश भटनागर, ''आधुनिक भारतीय शिक्षा और उसकी समस्यायें'', लॉयल बुक डिपो, मेरठ, 1975, पृष्ठ 35–36.

2. नायक जे०पी० नुरूल्ला सैयद, ''भारतीय शिक्षा का इतिहास'', मैकमिलन, दिल्ली, 1976, पृष्ठ 119. – महेश चन्द सिंघल, ''भारतीय शिक्षा की वर्तमान समस्यायें'', राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1970, पृष्ठ 111.

3. रामनाथ षर्मा, ''प्रमुख भारतीय षिक्षा दार्षनिक'' विनीत पब्लिकेशन, मेरठ, पृष्ठ 30.

4. सरयु प्रसाद चौबे, ''भारतीय शिक्षा की समस्यायें'', विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 1985, पृष्ठ 219.

5. महेश चन्द सिंघल, ''भारतीय शिक्षा की वर्तमान समस्यायें'', राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1970, पृष्ठ 112.

6. रामनाथ शर्मा, ''प्रमुख भारतीय शिक्षा दार्शनिक'', विनीत पब्लिकेशन, मेरठ, पृष्ठ 61.

7. जवाहर नेहरू, ''डिस्कवरी ऑफ इण्डिया'', मेरेडियन, लन्दन, 1966, पृष्ठ 211. – बलराज गधोक, ''इण्डिया नाइजेसन'', एस० चन्द एण्ड कम्पनी, दिल्ली, 1970, पृष्ठ 69.

8. नेहरू का दर्शन, एन०पी०ई०–86 के सन्दर्भ में, डॉ० जे०एस० झा, नेशनल कॉन्फ्रेन्स ऑन नेहरू एण्ड हिज फिलॉसफी विद् स्पेषनल रेफ्रेन्स टू एन०पी०ई० 26–27 मई, 1990, हिन्दू कॉलिज, मुरादाबाद, पृष्ठ 12.

9. जवाहर लाल नेहरू के भाषण, खण्ड–1, पब्लिकेशन डिवीजन, मिनिस्ट्री ऑफ इन्फॉरमेशन एण्ड ब्रॉडकास्टिंग, गवरमेन्ट ऑफ इण्डिया, 1949, पृष्ठ 28.

10. जवाहर लाल नेहरू स्पीजिंज खण्ड चार, पब्लिकेशन डिवीजन, मिनिस्ट्री ऑफ इन्फॉरमेशन एण्ड ब्राइकास्टिंग गवरमेन्ट ऑफ इण्डिया, 1969, पृष्ठ 190.